4 फरवरी, 2008 को 1700 बजे गोवा में डा. डी. डी. कोशाम्बी फेस्टिवल ऑफ आइडियाज के उद्घाटन के अवसर पर भारत के माननीय उपराष्ट्रपति द्वारा दिया गया अभिभाषण

4 फरवरी, 2008
गोवा।

विश्व शांति का उत्तरदायित्व

गोवा के इस स्वास्थ्यवर्धक वातावरण में मेरा यहां मौजूद होना तथा डी. डी. कोशाम्बी फेस्टिवल ऑफ आइडियाज में भाग लेने हेतु आमंत्रित किए जाने का सम्मान पाना मेरे लिए खुशी की बात है।

दामोदर धर्मानन्द कोशाम्बी बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी थे और गणित एवं मुद्राशास्त्र के क्षेत्र में वे विद्वान लोगों के चहेते रहे हैं। उनमें से एक इतिहासकार ए.एल. बाशम थे, जो कि 'द वंडर दैट वाज इंडिया' के लेखक थे और उनके आजीवन मित्र बने रहे। कोशाम्बी के निधन पर बाशम ने उनके प्रति एक व्यक्तिगत श्रद्धांजलि में लिखा कि उनकी प्रारंभिक धारणा यह थी कि उनके मित्र के जीवन में केवल तीन रुचियां हैं- प्राचीन भारत, गणित और शांति की रक्षा; उन्होंने आगे लिखा कि इन सभी के लिए "अपने दृढ़ विश्वास के अनुसार कर्तव्यपरायणता के साथ कठिन कार्य किया।" यही विचार राष्ट्रपति वी.वी. गिरि के भी थे, जिन्होंने कोशाम्बी स्मारक समिति की अध्यक्षता की और 1974 में प्रकाशित निबन्ध संग्रह के स्मारक अंक में प्राक्कथन भी लिखा।

कोशाम्बी शांति के लिए एक सक्रिय संघर्षकर्ता थे और शीत युद्ध के दौर में उन्होंने शांति में बाधा डालने वाले कारणों का विश्लेषण किया। उनकी राय थी कि शांति विकास की पहली शर्त है और सही मायनों में शांति के लिए 'वास्तविक प्रजातंत्र' की जरूरत होती है, जहां सभी लोग वास्तव में समान हैं और कोई भी व्यक्ति श्रेष्ठ होने का दावा नहीं करता है; उनका मुख्य ध्यान वैश्विक समुदाय में शांति स्थापित करने पर था। सबूत बताते हैं कि समाजों के बीच विवादों के शांतिपूर्ण समाधान उनकी प्राथमिकताओं में से थे। उनकी विचार प्रक्रिया उनकी वैचारिक उन्मुखता से प्रभावित थी, जिसके बारे में, यदि निष्पक्ष होकर बात की जाए, तो अलग से चर्चा करना जरूरी होगा।

मेरी कोशिश आज शांति की आकांक्षा, और हमारे अपने दौर में विश्व के लिए उसकी प्रासंगिकता की तलाश करने की रहेगी।

II

हमारे सम्मुख एक ऐसा विरोधाभास है जिसके कई गंभीर आयाम हैं। मानव इतिहास पर यदि नजर डालें तो हिंसा की भूमिका स्पष्ट हो जाती है। इसके साथ ही, शांति की आकांक्षा भी मानव इतिहास में हमेशा से रही है। दार्शनिक लाओत्से ने 5वीं सदी ई.पू. में इसके लिए आवश्यक पूर्व-शर्तों का उल्लेख करते हुए कहा था:

यदि दुनिया में शांति चाहिए,
तो राष्ट्रों में शांति होनी चाहिए।
यदि राष्ट्रों में शांति चाहिए,
तो नगरों में शांति होनी चाहिए।
यदि नगरों में शांति चाहिए,
तो पड़ोसियों के बीच शांति होनी चाहिए।
यदि पड़ोसियों के बीच शांति चाहिए,
तो घर में शांति होनी चाहिए।
यदि घर में शांति चाहिए,
तो दिल में शांति होनी चाहिए।

ऐसे ही उदगार एक अन्य दौर में अन्यत्र भी व्यक्त किए गए थे। मध्यकालीन इतालवी विद्वान पडुआ के मर्सिलियस ने डिफेंसर पेसिस की शुरुआत एक उद्धरण से की थी, जो छठी सदी के रोमन राजनेता फ्लेवियस कैसिडोरस द्वारा शांति के अर्थ से संबंधित है:

'शांति, जिसके कारण लोगों में समृद्धि आती है और राष्ट्रों का कल्याण संरक्षित रहता है, निश्चित रूप से प्रत्येक राज्य की आकांक्षा होनी चाहिए। क्योंकि यही श्रेष्ठ कलाओं की उत्तम जन्मदात्री है। इससे मानव जाति को निरन्तर वृद्धि करने का अवसर और शक्ति मिलती है तथा उसके रीति-रिवाजों का विस्तार होता है और जो उसकी आकांक्षा नहीं करता, उसे इतने महत्वपूर्ण सरोकारों से अनभिज्ञ ही समझा जाता है।'

मर्सिलियस ने निष्कर्ष के तौर पर कहा 'यदि हमें पहले से शांति उपलब्ध नहीं है, तो हमें शांति की कामना करनी चाहिए, उसे पाने की चाह करनी चाहिए, और एक बार उसे हासिल कर लेने के बाद उसे बचाए रखने की कोशिश करनी चाहिए और जो कोई उसके विरोध में हो, उसका पूरी शक्ति के साथ मुकाबला करना चाहिए'।

मानव के लक्षण के तौर पर शांति की खोज का जो अर्थ लिया जाता है, वह मानव समूहों के बीच शांति से भिन्न है। मानव समूहों के बीच शांति का अर्थ उनके बीच होते रहने वाले संघर्ष और उसके कारण बल प्रयोग अथवा समझौते के जरिए सुव्यवस्था लागू करने के लिए जरूरी शांति से

संबंधित है। शांति के लिए अंतिम प्राधिकारी की जरूरत सभी प्रकार के समूहों में महसूस की गई; इसके लिए समर्थन अमूमन मानव के स्तर पर ही रहा, किंतु कभी-कभी अति-मानवीय आवेग के प्रति भी समर्पण व्यक्त किया गया। इस रूप में संप्रभुता उसकी वैचारिक अवधारणा से भी पहले से मौजूद थी।

किसी समूह - समाज अथवा राज्य - के सदस्यों के बीच शांति स्थापित करने की अपेक्षा जहां समझौते अथवा किसी अंतिम प्राधिकारी के जरिए की जाती थी, जबकि समूहों अथवा राज्यों के बीच सामंजस्य स्थापित करना बिल्कुल अलग ही अभ्यास माना जाता था। इसे हासिल करने का एक तरीका प्रभुत्व स्थापित करने का था; इसलिए राजनीतिक शब्दावली में रोम की शांति (पैक्स रोमना), ब्रिटेन की शांति (पैक्स ब्रिटैनिका) जैसे शब्दों का प्रयोग प्रचलन में आया। लेकिन इसे स्थायी अथवा सर्व-समावेशी उपाय नहीं पाया गया। इसीलिए, संघर्ष प्रबंधन अथवा आचार संहिता के जरिए समाधान की जरूरत महसूस की गई, जिन्हें शांति और युद्ध की अंतर्राष्ट्रीय विधि के तौर पर जाना गया।

संघर्ष के समाधान की कोई-न-कोई पद्धति सभी समाजों में पाई जाती है। कौटिल्य सुलह स्थापित करने के छः तरीकों का उल्लेख करते हैं। आधुनिक दौर में, राष्ट्रों के बीच शांति स्थापित करने के सैद्धांतिक और व्यावहारिक प्रयासों ने पुनर्जागरण के बाद के युग के यूरोप में, स्वरूप ग्रहण किया। ग्रोटियस जैसे प्रचारवादियों ने इसकी शुरुआत की; इमैनुअल कांट जैसे दार्शनिकों ने स्थायी शांति (परपेचुअल पीस) पर अपनी किताब में इसे सैद्धांतिक गहराई प्रदान की, जिसमें उन्होंने तर्क दिया कि शांति अनिवार्य रूप से हित की पारस्परिकता पर आधारित सचेत प्रयास के जरिए स्थापित की जानी चाहिए। इस हित के बारे में कांट की अवधारणा गौर करने लायक है :

'वाणिज्य की भावना, जो कि युद्ध के साथ मेल नहीं खाती, देर-सबेर अधिक महत्व हासिल कर लेती है। चूंकि धन की शक्ति शायद राज्य की शक्ति समेत सभी तरह की शक्तियों में सबसे अधिक भरोसेमंद है, इसलिए राज्य, सम्मानजनक शांति को बढ़ावा देने और जब कभी युद्ध की आशंका हो तो मध्यस्थता के जरिए उसको रोकने के लिए, बिना किसी नैतिक साहस के, स्वयं को विवश पाते हैं।'

वाणिज्य को शांति का प्रोत्साहक मानने के मामले में कांट अपने समय से आगे थे। 18वीं और 19वीं सदी में आधिपत्य और युद्ध के जरिए वाणिज्य को प्रोत्साहन देने का तरीका अधिक प्रबल था। फिर भी, दूसरे दृष्टिकोण को मानने वाले भी थे। वर्ष 1909 में सर नॉर्मन एंजेल ने दि ग्रेट इल्यूजन प्रकाशित की जिसमें उन्होंने तर्क दिया कि आधुनिक वाणिज्य ने युद्ध को, यहां तक कि तकनीकी रूप से विजेता देश के लिए भी, आवश्यक तौर पर अलाभकारी बना दिया है। उन्होंने कहा कि युद्ध में सफलता एक भ्रम है।

फिर भी, युद्ध की व्यर्थता के बारे में गंभीर चिंतन प्रथम और द्वितीय विश्व युद्धों के अनुभव और रक्तपात के बाद ही शुरू हो पाया। अगस्त, 1945 में प्रधान मंत्री एटली ने ब्रिटेन को परमाणु

ऊर्जा के उपयोग को 'हमारे अपने उद्देश्यों के लिए नहीं, बल्कि विश्व में शांति और न्याय को बढ़ावा देने के लिए सभी लोगों के हित में मानवता के न्यासी के रूप में' प्रतिबद्ध किया। राष्ट्रपति ट्रूमैन ने भी ऐसा ही किया। संयुक्त राष्ट्र घोषणापत्र की उद्देशिका का आरंभ 'आने वाली पीढ़ियों को युद्ध की विभीषिका से बचाने के' संकल्प की अभिव्यक्ति से होता है। इस प्रकार, शांति के लिए ख़तरों को दूर करना संयुक्त राष्ट्र का प्राथमिक उद्देश्य बन गया। पांच दशक बाद भी, इसमें आंशिक सफलता ही हासिल हो सकी और युद्ध को, जिसे राष्ट्रों के बीच संगठित हिंसा के रूप में परिभाषित किया जाता है, अब भी अपने उद्देश्यों को हासिल करने का नीतिगत उपाय समझा जाता है।

वर्ष 1987 में प्रकाशित अपने मौलिक अध्ययन में इतिहासकार पॉल केनेडी ने उस तरीके का अध्ययन करने के लिए, जिसके द्वारा आधुनिक इतिहास की बड़ी शक्तियों ने आर्थिक समृद्धि, प्रौद्योगिकीय आविष्कारों, हथियारों की बढ़ती कीमतों और अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य तथा शक्ति समीकरणों में हुए परिवर्तनों का सामना करने की कोशिश की, अर्थशास्त्र और रणनीति के बीच संवाद का सर्वेक्षण किया। उनका निष्कर्ष था कि :

'बड़े राष्ट्रों के बीच परमाणु अथवा पारंपरिक युद्धों का परिणाम जो भी हो, यह स्पष्ट है कि संतुलन में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे हैं और आगे भी होते रहेंगे, शायद पहले की तुलना में कहीं अधिक तेजी से। जो बात अधिक महत्वपूर्ण है वह यह कि ये परिवर्तन दो अलग किंतु आर्थिक उत्पादन और रणनीतिक शक्ति के संवादी स्तरों पर हो रहे हैं....'

'इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था में वर्तमान बड़ी शक्तियाँ उन दो चुनौतियों का सामना करने के लिए विवश हैं जो उनके सभी पूर्ववर्तियों के समक्ष भी रही थीं: पहला, आर्थिक वृद्धि का असमान विन्यास, जिसके कारण उनमें से कुछ दूसरों की तुलना में अधिक समृद्ध (और प्राय: अधिक शक्तिशाली) हो गए; और दूसरा, विदेशों में प्रतिस्पर्धी और कभी-कभी खतरनाक परिस्थिति, जिसके कारण उन्हें अधिक तात्कालिक सैन्य सुरक्षा और दीर्घकालिक आर्थिक सुरक्षा में से किसी एक को चुनने के लिए बाध्य होना पड़ता है'।

इस तरह की परिस्थिति में, ये प्रयास आवश्यक रूप से वैश्विक असुरक्षा के प्रबंधन तक सीमित रह जाते हैं। बुतरस घाली की कार्यसूची इसी प्रस्तावना पर आधारित थी। पिछले डेढ़ दशक के दौरान शांति बनाए रखने, शांति का माहौल तैयार करने और युद्धों को टालने के लिए कार्यढांचा तैयार करने हेतु काफी कार्य हुआ है। तथापि, ये प्रयास इलाज के बजाय रोकथाम के इर्द-गिर्द ही घूमते हैं।

वर्ष 1988 में प्रधान मंत्री राजीव गांधी ने संयुक्त राष्ट्र में कहा था कि 'निवारण के सिद्धांतों के परिणामस्वरूप, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों का अत्यधिक सैन्यीकरण हुआ है' और यह कि 'ऐसी शांति जो शक्ति की समानता की तलाश पर आधारित हो, एक अनिश्चित शांति है'। उन्होंने परमाणु अस्त्रों से मुक्त विश्व के लिए एक समयबद्ध कार्यक्रम और संयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान में एक व्यापक वैश्विक सुरक्षा प्रणाली की स्थापना के लिए वार्ताओं की शुरुआत का प्रस्ताव किया।

परमाणु निरस्त्रीकरण के लिए इसे तथा अन्य सुझावों को अनसुना करने के बाद, संयुक्त राज्य अमरीका के प्रतिष्ठानों के कुछ व्यक्तियों ने हाल ही में एक पहल की है। परमाणु अस्त्रों के 'खतरनाक हाथों में जाने से' चिंतित उन लोगों ने 'परमाणु अस्त्रों पर निर्भरता को कम करने के लिए वैश्विक प्रयासों का आह्वान किया है, ताकि खतरनाक हाथों में उनको जाने से रोका जा सके और अंतत: उन्हें विश्व के लिए खतरे के रूप में पूरी तरह से खत्म किया जा सके'। परमाणु अस्त्रों से मुक्त विश्व के लिए 'आवश्यक राजनीतिक इच्छा-शक्ति' जरूरी है ताकि 'प्राथमिकताओं के संबंध में अंतर्राष्ट्रीय आम-सहमति बनाई जा सके'। वे स्वीकार करते हैं कि इसे 'शून्य की तरफ बढ़ने की दृष्टि के बिना नहीं किया जा सकता तथा हम अपने पतन को रोकने के लिए जरूरी अनिवार्य सहयोग नहीं पा सकेंगे'। ये विचार अभी हाल ही में 18 जनवरी को दि वाल स्ट्रीट जर्नल के प्रति-संपादकीय पृष्ठ पर छपे थे।

III

रणनीतिक प्रतिमान, जैसा कि उसे अभी तक समझा गया है, युद्ध का सहारा लेने वाले राष्ट्रों को उसकी संभावना से बचने का विकल्प नहीं देता। इसलिए स्थायी शांति को मानवता का उद्देश्य बनाने के लिए एक बिल्कुल अलग दृष्टिकोण अपनाया जाना आवश्यक हो जाता है।

विश्व शांति के लिए किसी नए कार्यढांचे की शुरुआत हमारी शब्दावली में शब्दों के अर्थ के बारे में अवधारणात्मक स्पष्टता से होनी चाहिए। क्या शांति को युद्ध की अनुपस्थिति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है? यदि हां, तो यह अस्थायी प्रकृति की चातुर्य भरी स्थिति है, जिसमें कोई मूल्यगत निर्णय या उस तरह के निर्णय के लिए प्रतिबद्धता शामिल नहीं है। इस शब्द के अर्थगत इतिहास के अध्ययन से ही इस बात का पता चल जाता है। विवाद, शत्रुता, संघर्ष (सशस्त्र अथवा निरस्त्र) की छाप इसमें हमेशा से मौजूद रही है; और कुछ हद तक इसकी स्वीकार्यता भी ऐसी ही रही है। ऑस्कर वाइल्ड का एक दोषदर्शी कथन शायद मानव की समझ को सटीक रूप से अभिव्यक्त करता है: 'जब तक युद्ध को बुरा समझा जाता रहेगा, तब तक इसके प्रति आकर्षण बना रहेगा। जब इसे अभद्र मान लिया जाएगा, तब यह लोकप्रिय नहीं रह जाएगा'।

बीसवीं सदी की शुरुआत में दार्शनिक विलियम जेम्स ने शांतिवादी दृष्टिकोण के समक्ष आने वाली बाधाओं की पहचान की थी। उन्होंने 1906 में लिखा, 'युद्ध के विरुद्ध युद्ध किसी अवकाश अथवा शिविर पार्टी जैसा नहीं होने जा रहा। सामरिक प्रवृत्तियाँ इतनी गहरी जड़ें जमा चुकी हैं कि हमारे आदर्शों में से उसके स्थान को हटा पाना तब तक संभव नहीं होगा जब तक कि उस गर्व और शर्म के स्थान पर बेहतर भावनाओं की प्रेरणा न हो, जो राष्ट्रों और व्यक्तियों के समक्ष राजनीति के उतार-चढ़ाव और व्यापार के परिवर्तनों के कारण आते हैं।'

एक शताब्दी बाद रॉबर्ट फिस्क ने भी अपनी यादगार पुस्तक दि ग्रेट वार फॉर सिविलिजेशन में इसी समस्या का उल्लेख किया:

'सरकारें इसी तरीके को पसंद करती हैं। वे चाहती हैं कि जनता युद्ध को विरुद्धों के नाटक-- अच्छाई और बुराई, 'वे' और 'हम', जीत या हार के टकराव-- के रूप में देखे। लेकिन युद्ध का संबंध मूल रूप से जीत या हार से नहीं, बल्कि मृत्यु और मृत्यु की पीड़ा से है। यह मानव चेतना की संपूर्ण विफलता को व्यक्त करता है।'

सच्चाई यह है कि विश्व राजनीति के दायरे में, युद्ध से बचने को, जैसा कि हेडली बुल ने इसे कहा है, 'स्वयं राज्य व्यवस्था के संरक्षण से कम महत्वपूर्ण लक्ष्य के रूप में....और राज्यों की संप्रभुता या स्वतंत्रता के संरक्षण से भी कम महत्वपूर्ण लक्ष्य के रूप में समझा जाता है....इन अन्य लक्ष्यों की तुलना में शांति का दर्जा कम होने को "शांति और सुरक्षा" जैसे वाक्यांश में भी देखा जा सकता है जो कि संयुक्त राष्ट्र के घोषणापत्र में आता है।'

इसलिए हम युद्ध और युद्धक कार्यकलापों की अभद्रता कैसे प्रदर्शित करें, उन विचारों के साथ अपनी सहबद्धता को कैसे मिटाएँ जो युद्ध को विश्वसनीयता प्रदान करते हैं, और मानवता के लिए उसके दुष्परिणामों को कैसे उजागर करें? क्या युद्ध के विरुद्ध एक युद्ध छेड़ा जा सकता है? यह चुनौती अत्यंत विकट है।

एक विवेकशील दृष्टिकोण अपनाने के लिए यह आवश्यक है कि इस विषय पर इन चार परिप्रेक्ष्यों में विचार किया जाए:

परमाणु युग में युद्ध की अव्यावहारिकता;

सत्ता की राजनीति की अप्रभावकारिता;

युद्ध के लिए नई अपरिहार्यताओं का उद्भव, और उनके दुष्परिणाम;

व्यक्तियों, समूहों और राष्ट्रों के बीच संबंधों के निर्वाह में न्याय की भावना अंतर्निहित करने की अपरिहार्यता।

परमाणु युग में युद्ध अकल्पनीय हो गए हैं। इसके दुष्परिणामों के बारे में, अन्य व्यक्तियों के साथ-साथ जॉर्ज केन्नान ने 1982 में प्रकाशित 'दि न्यूक्लियर डिल्यूजन' में चर्चा की। इसके बावजूद, सत्ता की पहचान के रूप में परमाणु अस्त्रों को हासिल करने की प्रेरणा काफी व्यापक है और नई-नई प्रौद्योगिकियों के कारण ऐसा करना दिनोंदिन आसान भी होता जा रहा है। अंतर्राष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी (आई.ए.ई.ए.) के डॉ. मोहम्मद अल बरदेई के मुताबिक, 'जल्द ही दुनिया में किसी भी समय परमाणु अस्त्र विकसित कर सकने की क्षमता वाले 30 देश हो जाएंगे।' इसलिए एकमात्र विवेकसम्मत विकल्प यह है कि 1972 में जैवीय अस्त्रों से संबंधित और 1997 में रासायनिक अस्त्रों से संबंधित पहले हो चुके अंतर्राष्ट्रीय समझौतों की तरह ही विश्वव्यापी, व्यापक, परमाणु निरस्त्रीकरण का अभियान शुरू किया जाए। इस तरह की व्यवस्था में कोई अपवाद नहीं हो सकता।

अस्थायित्व का कारण अपरिहार्य रूप से सत्ता की राजनीति और प्रभुत्व, वर्चस्व या श्रेष्ठता की लालसा रहेगी, जो विश्व व्यवस्था में राष्ट्रों को हथियारों का सहारा लेने के लिए उकसाती रही है।

इसके तौर-तरीके भिन्न-भिन्न हो सकते हैं; संयुक्त राज्य अमरीका की नेशनल इंटेलीजेंस काउंसिल का मूल्यांकन है कि 'पिछली शताब्दियों की तुलना में, जब स्थानीय संघर्षों ने विश्व युद्धों का रूप ले लिया, अगले 15 वर्षों में बड़ी शक्तियों के बीच किसी संघर्ष के संपूर्ण युद्ध के स्वरूप में बदलने की संभावना पिछली सदी के किसी भी दौर की तुलना में कम है'। फिर भी, स्थानीय या क्षेत्रीय युद्ध आगे भी भड़कना जारी रहेंगे। ऐसा प्रत्येक युद्ध विकास में बाधक और मानव के दु:ख को बढ़ाने वाला होगा। इसलिए संघर्ष के निवारण के लिए कोई नई व्यवस्था आवश्यक है।

भविष्य के संघर्षों के लिए एक नया, और अब तक अप्रयुक्त क्षेत्र संसाधनों के लिए, जलवायु परिवर्तन, और पर्यावरण संबंधी व्यापक प्रश्नों को लेकर वर्तमान और भावी प्रतिस्पर्धा की अनिवार्यता में निहित है। आर्थिक इतिहासकार एंगस मैटरसन ने उल्लेख किया है कि मानवता की प्रति व्यक्ति औसत वास्तविक आय 1820 की तुलना में अब तक 10 गुनी बढ़ चुकी है। तथापि, यह बढ़ोतरी काफी अलग-अलग हैं। प्रौद्योगिकी और संसाधन की उपलब्धता इस प्रयास में अत्यंत महत्वपूर्ण रहे हैं। साथ ही साथ, एक विरोधाभास भी स्पष्ट रूप से उभर रहा है। प्रौद्योगिकी में बेहतरी आ रही है, लेकिन संसाधनों की घटती उपलब्धता भय को बढ़ाने वाली है, और उसकी प्रतिक्रिया खलबली मचा रही है।

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (यूएनईपी) के अक्तूबर, 2007 में प्रकाशित 'ग्लोबल इनवायरनमेंट आउटलुक' में यह बात रेखांकित की गई है कि 'हम अपने साधनों के दायरे के बाहर जाकर जी रहे हैं' और हमें पर्यावरण, विकास और ऊर्जा संकट को अलग-अलग मानने के बजाय एक ही समझने की जरूरत है। इसमें इस बात पर बल दिया गया है कि हालांकि सरकारों से इस मामले में पहल करने की आशा की जाती है, लेकिन दूसरे सहभागी भी सतत विकास को हासिल करने में सफलता सुनिश्चित करने के लिए उतने ही महत्वपूर्ण हैं: हमारा साझा भविष्य हमारे आज के कार्यों पर निर्भर करता है, न कि कल के या भावी किसी समय के'।

यू.एन.ई.पी. रिपोर्ट के निष्कर्ष में ध्यान राज्य से हटाकर जनता की ओर कर दिया गया है: 'यद्यपि सरकारों से नेतृत्व करने की उम्मीद की जाती है, तथापि अन्य हिस्सेदार सतत् विकास लाने में सफलता सुनिश्चित करने के लिए उतने ही महत्वपूर्ण हैं। हम जिन चुनौतियों का सामना करते हैं, उनके बारे में हमारी समझ के बढ़ने से, अब अपने अस्तित्व तथा अपनी भावी पीढ़ियों के अस्तित्व की रक्षा करने की कार्रवाई किए जाने की आवश्यकता इससे ज्यादा महती नहीं हो सकती और समय इससे ज्यादा अनुकूल नहीं हो सकता'।

IV

जो तस्वीर उभरकर आई है उसका विवरण निम्नलिखित आठ प्रस्तावों में दिया जा सकता है:

* मानवीय अस्तित्व का नया प्रतिमान एक ऐसी व्यापक सुरक्षा पर आधारित होना चाहिए जिसमें परम्परागत एवं गैर-परम्परागत दोनों ही प्रकार की सुरक्षा सम्मिलित हों।
* अनुभव दर्शाता है कि प्रतिस्पर्द्धी सुरक्षा के परिणामस्वरूप टकराव और संघर्ष पैदा होते हैं।
* संघर्षों की संभावना और तीव्रता को विश्व स्तर पर लागू एक ऐसी निरस्त्रीकरण योजना के माध्यम से नियंत्रित तथा कम किया जा सकता है, जो परमाणु निरस्त्रीकरण से आरम्भ होती है।
* इसका विकल्प प्रतिस्पर्द्धी आवश्यकताओं के समायोजन पर आधारित सहकारी सुरक्षा विकल्प है।
* ऐसे समायोजन के लिए पूर्व ज्ञात किसी ऐसे विषय, ऐसे सिद्धांत की आवश्यकता होगी जिससे मतभेदों और असहमतियों का समाधान करने तथा उनके बढ़ने को रोकने में मदद मिल सके।
* ऐसा सिद्धांत सिर्फ न्याय की संकल्पना पर ही आधारित हो सकता है, जिससे हमें ऐसी भिन्न-भिन्न संभावित व्यवस्थाओं के बीच चयन करने में मदद मिलती है, जो लाभों के विभाजन का निर्धारण समान आधार पर करती हैं और अधिकारों तथा कर्तव्यों को समनुदेशित करती हैं। मनु ने कहा था, 'जब न्याय का विनाश किया जाता है, तो यह विनाश करता है; जब न्याय का संरक्षण किया जाता है, तो यह संरक्षण प्रदान करता है'।
* न्याय पर आधारित एक वैश्विक समाज में युद्ध के लिए कोई स्थान नहीं होता है, क्योंकि इसके प्रवर्तनशील सिद्धांत द्वारा लालच और आक्रामकता दोनों ही कम हो जाएंगे।
* ऐसे उद्देश्य की पूर्ति अकेले राज्य कार्रवाई पर नहीं छोड़ी जा सकती है और इसमें नागरिक समाज के 'अन्य हिस्सेदारों' की सक्रिय सहभागिता भी होनी चाहिए।

ऐसे बहुत से लोग होंगे जो ऐसे दृष्टिकोण को काल्पनिक तथा अव्यावहारिक समझेंगे और इसकी तुलना वास्तविक और व्यावहारिक दृष्टिकोण से करेंगे। इसका उत्तर ऐसे 'यथार्थवाद' -अर्थात् आत्म-विनाश की ओर मानवजाति द्वारा किए जाने वाले स्थिर प्रयास- के निहितार्थ निकालने में निहित है। अन्य शब्दों में, शांति को मूल्य और व्यावहारिक दृष्टि से अच्छा प्रदर्शित किया जाना चाहिए क्योंकि युद्ध को वास्तविक रूप में हानिकारक दर्शाया जाता है।

फिर, अंतिम विश्लेषण में, हमें कोशाम्बी के दर्शन में यह अच्छाई दिखाई देती है कि शांति विकास के लिए पहली शर्त है और सच्ची शांति के लिए सच्चा लोकतंत्र अपेक्षित है, जहां सभी इंसान बराबर हों।

अतः विश्व शांति का संघर्ष समानता, न्याय तथा लोकतंत्र हेतु एक खोज होना चाहिए। इसे बढ़ावा देने के तौर-तरीके निश्चित रूप से जन-जागरण तथा जन-कार्रवाई द्वारा निर्धारित होंगे।